माउस और भैंस

हिन्दी ADDA

गोविंद उपाध्याय

माउस और भैंस

मई का महीना चल रहा था। पारा बयालिस डिग्री पार कर चुका था। दिन में तो मानो आग बरस रहा था। लू के थपेड़ों के कारण बाहर निकलने में दहशत होती थी। शुक्र था कि इस समय मेरे ऑफिस का सेंट्रल ए.सी. काम कर रहा था। जिसके कारण ऑफिस

में बैठना सुखकर लग रहा था। मैंने कंप्यूटर के डेस्क टाप पर आनलाइन रिजर्वेशन के लिए आई.आर.सी.टी.सी. का वेब पेज खोल रखा था। बनारस जाने वाली सभी गाड़ियों में सीट फुल था। वेटिंग की पोजीशन भी बहुत अच्छी नहीं थी। मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा था कि क्या किया जाए? मन था कि बार-बार भटक रहा था। सुबह-सुबह फोन आया था - 'मन्ना भइया नहीं रहे।' मन्ना भइया के मृत्यु से किसी को कोई फर्क नहीं पड़ना था। लेकिन मुझे फर्क पड़ रहा था। एक हजार किलोमीटर की यात्रा बिना रिजर्वेशन का करना किसी यातना से कम नहीं था। वह भी इस मौसम में...।

फिर अपनी सोच पर थोड़ी ग्लानि हुई। और मैं अपने कुर्सी से उठकर खिड़की के पास आ गया। पाँचवी मंजिल पर मेरा ऑफिस था। खिड़कियों पर गाढ़े कत्थई रंग के पर्दे लगे थे। मैंने पर्दे को थोड़ा सा खिसकाया। चिलचिलाती धूप के आभास मात्र से ही चेहरे पर तपन महसूस होने लगी। बाहर सड़क पर भैंसा गाड़ी वाले अपने ठेले को खींच रहे थे। एक बूढ़ा आदमी सिर पर अखबार रखे धीरे-धीरे चला जा रहा था। रिक्शा वाला भी सवारी के साथ तेजी से पैडल मारता निकल गया। मोटर साइकिल पर तीन बच्चों को बिठाए अधेड़ अभी-अभी सड़क से गुजरा था। एक दूधिया अपने साइकिल पर दूध के पीपे लादे घर के लिए लौट रहा था। क्या इन्हें गरमी नहीं लग रही है। लगती भी होगी तो भी मजबूरी है। पेट से जुड़ा है सब कुछ...। यह मजबूरी तो मेरे साथ भी है। आठ घंटे की कैद में पाँचवें फ्लोर के रूम नंबर सेविन-बी में। सिक्स बाई सिक्स के माड्यूल फर्नीचर पर रखे कंप्यूटर के की बोर्ड और माउस से दिन भर उलझा रहता हूँ। काम करते-करते जब गर्दन अकड़ जाती है तो उठकर इस खिड़की से बाहर सड़क को निहारता हूँ। एक कैदी की तरह...।

मैंने पर्दे को खिड़की पर यथास्थिति कर दिया और वापस कुर्सी पर बैठ गया। चेहरे को तौलिए से पोंछने के बाद फिर से माउस थाम लिया और एक्सेल पर अपना पेंडिंग काम शुरू कर दिया। मन बार-बार गाँव की तरफ भागने लगता। मन्ना भइया के पास... महुआ के पेड़... त्रिजुग्गी का आम का बगीचा... बुदबुदहवा, बतिहरवा और लहसुनवा आम... रखातू के पास वाले तरकुल के चारों पेड़... बाणी वाली पोखरी... जहाँ बरसात में जित्तन मछली की चंगिया बाँधता था।

घर बट गया। खेतों का बटवारा हो गया। ताऊ जी का चूल्हा अलग हो गया। उनका परिवार पराया हो गया। पर मन्ना भइया सदा अपने ही बने रहे। वही मुस्कराता चेहरा... छोटी मिचमिची आँखे और हकला कर पूछना - 'क...क... क्या हुआ विपुल? ए... एतना परेशान काहें है...। ज... ज... ज... जो होता भले के लिए होता है...।'

जब बँटवारा हुआ तो बाबूजी बहुत परेशान हुए थे। नौकरी करें कि बाप दादा की जमीन सँभालें। मैं सबसे बड़ा था। पाँचवीं में पढ़ता था। हम दोनों भाई, इकलौती बहन संध्या, बाबूजी... अम्मा...। हम सब तो एक शादी के समारोह में आए थे। यहाँ ताऊजी बँटवारे की तलवार भाँज रहे थे। बाबूजी के ऊपर तब अच्छा खासा कर्ज था जो उन्होंने भतीजी की शादी के लिया था। ऐसे में अचानक अलग कर देना... बाबूजी को हक्का-बक्का कर गया था। वह तो बाद में पता चला कि वह सब पूर्व नियोजित था। बस वह अपनी बेटी के विवाह का इंतजार कर रहे थे। अब बाबूजी को जोड़े रखने से कोई फायदा नहीं था...। हम पाँचों उस घर से बेदखल कर दिए गए थे। पुस्तैनी मकान के बगल में झोपड़ी बनाकर बाबूजी उसी में गृहस्थी का सामान जुटाने लगे।

जब से होश सँभाला था। अपने आप को सरकारी मकान में पाया था। बाबूजी की नौकरी ठीक-ठाक थी। हमारे लिए यह एक दुर्घटना थी। हम सब सहमे हुए से थे। आज जब सोचता हूँ तो लगता है कि बाबूजी कितने तनाव में रहे होंगे। फिर जुलाई आ गया। स्कूल खुल गए। पर हम शहर नहीं लौटे। बाबूजी ने पास के गाँव के स्कूल में मेरा और संध्या का दाखिला करा दिया - 'विपुल... मेरे बेटे... समय अच्छा नहीं चल रहा है। तुम बड़े भी हो और समझदार भी अपनी बहन का ध्यान रखना। खूब मन लगा कर पढ़ना तुम्हें बड़ा आदमी बनना है।'

बाबूजी की आवाज भर्रा गई थी। मैं सिर उठाकर बाबूजी की तरफ देखा। बाबूजी की आँखों में पानी भरा था। मैं बाबूजी से कुछ बोलना चाहता था - 'चिंता न करिए बाबूजी मैं सब सँभाल लूँगा। बस संध्या को समझा दीजिए मुझसे लड़ा न करे और अम्मा को भी समझा दीजिए कि मुझे जरा-जरा सी बात पर डाँटा न करे।' पर मैं बोल नहीं पाया था।

विकल्प तब बहुत छोटा था। हम दोनों भाई-बहन गाँव के बच्चों के साथ स्कूल जाने लगे। पिताजी शहर आ गए। उन्हें मकान बनवाना था। भतीजी की शादी में लिया गया कर्ज अदा करना था। माँ अब लोरी नहीं गाती थी। वह गुनगुनाना भी भूल गई थी। कभी-कभी मुझे लगता कि उसकी आँखों में एक अजीब सा सहमापन झलकता। उस चिड़िया की तरह जो हमेशा अपने घोंसले के उजड़ने की आशंका से भयग्रस्त रहती है।

आखिर हो भी क्यों नहीं...। कल तक जिन हाथों पर भरोसा था। आज उन्हीं हाथों में पैने नाखून उग आए थे। जो हर पल इस कोशिश में रहते कि कैसे इन्हें लहुलूहान किया जाए। छोटी-छोटी बात पर ताऊजी के लड़के लड़ने-झगड़ने के लिए तैयार रहते थे। वो तो चाहते थे हम सब शहर चले जाए और वह हमारी जमीन का उपयोग उसी तरह करें जैसे बँटवारे के पूर्व करते रहे थे - 'देखते हैं साले कितने दिन तक यहाँ रहते हैं। जित्तन काका या तो नौकरी कर लें या फिर खेतीबाड़ी कर लें।'

माँ का असीम धर्य और पिता की कड़ी मेहनत थी कि वह झोपड़ी धीरे-धीरे पक्के मकान में बदलने लगी थी। हाँ! मेरे बचपन की हत्या हो गई। मेरी मासूमियत खत्म हो गई थी। मैं घर का सबसे बड़ा पुरुष था। मैं देखता था कि मेरे हिस्से के संसाधनों का भी इस्तेमाल वे पूरे दबंगई से करते। एक-एक आम के लिए हम भाई-बहन बगीचे में भटकते रहते और वे आते पेड़ों पर चढ़ते, उसको हिलाकर झोलों में आम भरते और चल देते। मैं और बहन सहमे से देखते रहते। तब मेरे दिमाग में ताऊ का परिवार मेरा सबसे बड़ा दुश्मन था और बड़ा होकर मुझे उनसे हर चीज का हिसाब लेना था।

आज जब सोचता हूँ तो सब कुछ अजीब सा लगता है। कैसा बँटवारा था यह...? बाबूजी ने आधा पेट खाकर जिस जमीन का बैनामा कराया था वह तो ताऊ जी के नाम थी। उसमें से कुछ भी नहीं मिला। बैल के तीन जोड़े तब दरवाजे पर बँधे थे। चार भैंसें थी दरवाजे पर। ताऊजी ने उनमें से कुछ भी देने से मनाकर दिया - 'जब तुम शहर में मजे की नौकरी कर रहे थे, तब यह सब मेरे बेटों ने अपने परिश्रम से बनाया था। यह सब मेरा है। इसमें तुम्हारा कैसा हिस्सा?'

बाबूजी कुछ नहीं बोले। हाँ! गाँव वालों ने जरूर आपत्ति किया, 'अरे भाई उसके भी तीन छोटे-छोटे बच्चे हैं। बैल न सही। एक भैंस तो दे दो। उसके बच्चों को भी दूध-दही मिलता रहे।'

तब मन्ना भइया ने भी गाँव वालों के साथ हाँ में हाँ मिलाया और ताऊजी उन्हें घूरते रहे थे। ताऊजी के तीन बेटे थे। बड़े मनोज और छोटे शिवा... मन्ना भइया मँझले थे। किंतु घर में शिवा का ही दबदबा था। यहाँ तक कि ताऊजी भी उनकी बात नहीं काट पाते थे। शिवा भइया ने उस समय दरियादिली दिखाई - 'ठीक है भाई एक भैंस काका जी भी ले लें। ए मन्ना भइया! आज से कोइली काका जी के हिस्से में गई। गाभिन है, दो महीना में कोइली बिया जाएगी और दूध मिलने लगेगा।'

मन्ना भइया ने सहमति से सिर हिलाया और कोइली हमारी हो गई। कोइली चारों भैंसों में सबसे पुरानी थी और बूढ़ी हो चली। यह उसका चौथा या पाँचवा बियान था। लेकिन हमें संतोष था कि हमारे दरवाजे पर भी एक जानवर हो गया। यही कोइली मुझे मन्ना भइया के काफी नजदीक ला दिया। स्कूल से आने के बाद मैं कोइली में व्यस्त हो जाता। शाम को तीन बजे गाँव के एक चरवाहों का झुंड अपनी भैंस चराने निकल पड़ता। उन चरवाहों के सरगना थे मन्ना भइया और भैंसो की सरगना थी कोइली। सबसे आगे होती थी कोइली। उस पर कल तक मन्ना भइया बैठा करते थे। अब मैं बैठता था... किसी चक्रवर्ती सम्राट की तरह। हम भैंसो को रखातू में चराते, बाग-बगीचों में चराते। जब भैंसें चरने में व्यस्त होती तो मन्ना भइया के किस्सों की पोटली खुल जाती।

वर्षों बीत चुके हैं। लेकिन जेहन को जरा सा खरोचा नहीं कि यादें जीवंत हो जाती है। मन उस हरियाली में डूबने लगता है। वर्ना अब जीवन कितना नीरस हो चुका है। सत्रह इंच के मानीटर के रंगीन स्क्रीन पर नजरे गड़ाए सारा दिन यूँ ही निकल जाता। माउस और की-बोर्ड के साथ खेलती अँगुलिया अब इतनी कमजोर हो चुकी हैं कि सब्जी का थैला उठाने पर दुखने लगती है।

ऑफिस में रघुवीर बाबू का ताल ठोक कर हर किसी को झगड़े के लिए ललकारना या फिर चार साल पहले ज्वाइन किए नए लड़के संजीव का अपनी चार महीने की बेटी से मोबाइल पर बात करना ऑफिस के रूटीन कार्य प्रणाली को बाधित करता है।

संजीव अपनी पत्नी को फोन पर ही डाँटता रहता। उसे लगता की वह बेवकूफ है। जबकि बेटी की हरकतों पर वह बहुत प्रफुल्लित होता। वह यही मानता है कि उसकी बेटी एक्स्ट्रा आर्डिनरी है।

रघुवीर बाबू परेशान है - उनकी बेटी तीस पार कर चुकी है। लड़की सुंदर है। उनके पास पैसा भी है। फिर भी उनकी बेटी की शादी नहीं हो पा रही है। सिर्फ उनकी कड़वी जुबान के कारण। रघुवीर बाबू किसी जमाने में बहुत सुंदर रहे होंगे। लेकिन अब उनके चेहरे पर एक अजीब तरह की कठोरता चस्पा हो गई थी। जिसके कारण लोग उनसे बात करने पर कतराते हैं।

मन्ना भइया को कभी मैंने गुस्से में नहीं देखा। वह अपने कमजोर व्यक्तित्व के बावजूद सबको बहुत प्यारे थे। उनकी वाणी में भले हकलाहट थी पर वह बोलते फिर भी मीठा थे। ठेठ गँवई होने के बावजूद भाषा में अजीब सी शालीनता थी। ज्यादा पढ़े-लिखे नहीं थे। आठवीं में पहुँचते-पहुँचते हाथ खड़ा कर दिए - 'ह... ह... हमारे बस की नहीं है यह पढ़ाई। क... का... कारेंगे जियदा पढ़ लि... लि... लिखकर... कवन सा... ल्ला... लार्ड गवर्नर बनना है।'

बस पढ़ाई से छुटकारा पा गए। ताऊ जी को एक फुल टाइम काम करने वाला मिल गया। ज्यादा जाँगर था नहीं... तो भैंस की जिम्मेदारी उन्हें मिल गई। चारा-पानी के लिए नौकर था। जो बैल-भैंस की देख-रेख करता। उसकी निगरानी के लिए मन्ना भइया थे।

मन्ना भइया हमेशा नहीं हकलाते थे। खासतौर से जब वह भैंस चाराते समय किस्से सुनाते। उनके किस्से भी कम मजेदार नहीं होते। उन्होंने सिर्फ एक बार इलाहाबाद तक ट्रेन से यात्रा किया था। वह भी गाँव वालों के साथ संगम में डुबकी लगाने चले गए थे। उसका किस्सा वह कई बार सुना चुके थे - 'भयवा इलाहाबाद टीशन पर एतना

भीड़ था कि एक बार तो मेरा मन ही घबरा गया। इ हम कहाँ फँस गए। उहाँ से घाट तक पहुँचने में हम फेंचकुर फेंक दिए। लेकिन मजा भी खूब आया। रमयना की महतारी ने स्नान करके मेरा पैर छू कर पाँच रुपया दिया अउर बोली कि महराज जब अपने गाँव जेवार का बाभन साथ है तो फिर पंडा के काहे पइसा दें। उ पाँच रुपया का रसगुल्ला खरीदे। का रसगुल्ला था भाय। एतना पतला छिलका कि पूछो मत। अंदर रस ही रस... बिया एतना छोटा कि जरको ध्यान चूका अउर बिया गया पेट में...।'

बाद में मैं न जाने कितनी बार इलाहाबाद गया। संगम भी गया। पर मन्ना भइया का बीजे और छिलका वाला रसगुल्ला कहीं नहीं मिला। मैंने कभी उनसे पूछा भी तो वह सिर्फ मुस्करा देते।

वैसे ही मन्ना भइया की जुड़वा महुआ के पेड़ बारे में कहानी थी। यह पेड़ गाँव के जाने वाले मुख्य रास्ते से बिलकुल लगा हुआ था। दोनों पेड़ दूर से देखने में एक लगते। लेकिन जब पास आकर देखते तो वह दो थे। मन्ना भइया बताते कि इस पर दो चुड़ैल बहनें रहती हैं। जो रोज रात को पेड़ समेत उड़ा करती थी। फिर किसी गाँव में उतरती और अपना शिकार तलाशती। जो डाकिनी-हाकिनी मंत्र जानता है वो किसी भी पेड़ को जड़ समेत उखाड़ कर कहीं भी उड़ा सकता है। फिर एक रोज अपने गाँव वाला जोखन ओझा रात में ओझाई जगा रहे थे। काला जादू का काट सिद्ध कर रहे थे। अचानक सिर उठाकर ऊपर देखा और अपने मंत्र बल से यहीं रोक लिया। फिर चुड़ैल बहनों को इसी महुआ के पेड़ से बाँध दिया। बस तबसे ये दोनों बहनें यहीं बँधी पड़ी हैं।

मुझे जोखन पर बहुत गुस्सा आया था। क्या जरूरत थी ऐसी खतरनाक चीज को अपने गाँव के पास रोकने की। मैं काफी दिनों तक उस रास्ते में अकेले जाने से घबराता था और जब कभी जाना भी पड़ता तो मन में हमेशा यह भय समाया रहता कि कहीं यह चुड़ैल बहनें मुझे ही तो नहीं देख रही है।

भैंस चराना भी एक कला है। यह मैंने मन्ना भइया से ही जाना। जब खेत खाली है, तब कोई बात नहीं है। लेकिन जब खेतों में फसल उगी हो, उस समय भैंस को दो खेतों के मेंड़ पर उगी घास को चराना बहुत जोखिम भरा काम होता है। जरा सी नजर चूकी नहीं कि भैंस ने हरे-भरे खेत में मुँह लगा दिया और जब तक आप सँभले। भैंस

तीन-चार गाल हरी फसल पर मुँह मार चुकी होती है। फिर भैंस को मारते रहिए और अड़ियल भैंस खेत से मुँह हटाने का नाम नहीं लेगी। नतीजा खेत के मालिक से झगड़ा...।

आज जब भैंस चराने के अपने उस अनुभव के बारे में सोचता हूँ तो यह कहने में जरा भी संकोच नहीं है कि माउस चलाना भैंस चराने से ज्यादा आसान काम है। मैं पाँच साल तक मन्ना भइया के साथ भैंस चराया था। उसके बाद दसवीं पास करने के बाद शहर आ गया। आगे की पढ़ाई जो करनी थी। गाँव आना-जाना कम होता चला गया। मन्ना भइया भी स्मृतियों में रह गए।

मन्ना भइया ने विवाह नहीं किया - 'इ... इ... इसब हमरे ब्ब... बस का नहीं है।' ताऊजी तो चाहते ही थे कि उनका भी घर बस जाए। मगर जब कोई विवाह का प्रस्ताव आता तो वह पहले घबराते और जब बात नहीं बनती तो उग्र हो जाते। ताऊजी ने उनकी इस हरकत से आजिज आकर उनके विवाह का विचार त्याग दिया।

मैं जब गाँव जाता, मन्ना भइया के लिए कुछ न कुछ जरूर ले जाता। वो एक बनियान पा जाने से ही खुश हो जाते। धोती-कुर्ता तो बड़ी बात थी। एक बार मैं उनके लिए इंपोर्टेड सेंट की सीसी ले गया तो वो हँस दिए थे - ' त... त... तुमहू शहर जा कर ब... ब्ब... बउरा गए हो। हम ब... ब्ब... बालब्रह्मचारी... त... त... तेल फुलेल से ह्ह... हमको क्या... मतलब...।'

बात उनकी सही थी। मुझे ग्लानि हुई। वह उस समय तक अपने घर में ही उपेक्षित हो गए थे। दोनों भाइयों का अपना परिवार था। उन्होंने पुश्तैनी जायदाद के दो हिस्से कर लिए। मन्ना भइया छह महीने बड़े भाई के यहाँ रहकर उनकी चाकरी करते। शेष छ्ह महीने छोटे भाई के साथ रहते। बैलों का युग बीत चुका था। गाँव में कई लोगों के पास ट्रैक्टर थे। पैसा फेंको और खेत तैयार करा लो। भैंसे भी बिक गई थी। सच तो यह था कि दोनों भाइयों की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। उनकी शक्ति पर भी उम्र का प्रभाव पड़ने लगा था। लड़के कामचोर और खर्चीले थे। जाहिर है आर्थिक ढाँचा तो चरमराना ही था। मन्ना भाइया जानवरों के तबेले में एक टुटही चारपाई पर पड़े रहते।

उनके आगे के दाँतों ने भी साथ छोड़ दिया था। वह बहुत कम बोलते और दिन भर अपने आस-पास भिनभिनाती मक्खियों को भगाया करते।

यह वह समय था। जब गाँव से मेरा संपर्क धीरे-धीरे टूटने लगा था। मेरा छोटा भाई गाँव का घर-जमीन सँभाल लिया था। मेरे पारिवारिक खर्चे बढ़ गए थे। गाँव जाने पर पूरा बजट ही बिगड़ जाता था। इसलिए जरूरत पर गाँव जाता। यह जरूरत इस बार करीब तीन साल से नहीं पड़ी थी।

पिछली बार गाँव गया तो मन्ना भइया बहुत कमजोर हो गए थे। वह लाठी के सहारे चलते। कपड़े भी काफी गंदे पहने हुए थे। मुझे देखे तो लिपटकर रोने लगे थे - 'त... त... तुमहो भुला दिए न...।'

तब मुझे लगा था कि शायद मन्ना भइया अब अगली बार नहीं मिलेंगे।

नहीं मैं मन्ना भइया को कभी नहीं भुला सकता। बचपन की स्मृतियों में कड़वापन ज्यादा है। उसमें मन्ना भइया की यादें बरसात की शीतल फुहार जैसी है।

मन्ना भइया के मुझ पर ढेर सारे एहसान है। जब आदमी डूब रहा होता है तो तिनका भी बहुत बड़ी चीज होती है। मन्ना भइया तो बहुत बड़ी नाव थे।

माना कि वो अब कभी नहीं मिलेंगे। इसके बावजूद मृत्यु के बाद की औपचारिकता के लिए ही सही...। मुझे गाँव जाना चाहिए। जाने के लिए दूसरे विकल्प भी हैं। मैं बस से भी तो जा सकता हूँ...। एक गहरी साँस खींचकर माउस पर हाथ रखा और कंप्यूटर पर छुट्टी एप्लाई के लिए आनलाइन खोलने लगा।

https://www.hindiadda.com/maus-aur-bhains/